उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत लघुशोध-प्रबंध का विषय है – "20 वीं सदी के अंतिम दशक के ग्रामीण उपन्यासों में सांप्रदायिकता" ('डूब', 'इदन्नमम' और 'मुखडा क्या देखे' के विशेष संदर्भ में) इस विषय पर चिंतन करने के लिए हमने 20 वीं सदी के अंतिम दशक के वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991), मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' (1994), और अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देखे'(1996), इन तीन बहुचर्चित महत्त्वपूर्ण ग्रामांचलिक उपन्यासों को चुनकर, इन उपन्यासों में चित्रित 'सांप्रदायिकता' को तलाशने का प्रयत्न किया है।

'सांप्रदायिकता' हमारे इतिहास एवं वर्तमान जीवन की त्रासदी है। 'संप्रदाय' से बना 'सांप्रदायिकता' यह शब्द भारत जैसे बहुभाषिक एवं बहुधार्मिक देश में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सांप्रदायिक सद्भाव को तिलांजलि देकर सांप्रदायिकता का उत्पीड़न भारत के प्रजातांत्रिक व्यवस्था के सामने गंभीर संकट पैदा कर रहा है। भारत में सदियों से 'धर्म' तथा 'धर्मतत्त्वज्ञान' का मानवी जीवन पर विशेष प्रभाव पडता आया है। मनुष्य के सामाजिक व्यवहार पर धर्म का नियंत्रण सदियों से चलता आया है। इस कारण भारत में विभिन्न धर्म-संप्रदायों का निर्माण होना स्वाभाविक था। हजारों सालों से आपसी भाईचारे से, प्रेम, सद्भाव, अमन और शांति की उज्जवल परंपरा का प्रतीक भारत पिछले पाँच दशकों से 'सांप्रदायिकता' के भयावह शैतानी शिकंजों में दब गया है। 'सांप्रदायिकता' संकुचित हीन मानसिकता का द्योतक है जिससे दो भिन्न धर्मों, मजहबों, जातियों, वंशों के सदस्य धर्मांधता में झुलस उठते हैं।

'सांप्रदायिकता' के भारतीय परिवेश पर दृष्टिक्षेप डालने से स्पष्ट होता है कि 'धर्मप्रसार' को लक्ष्य बनाकर भारत में 'इस्लाम' और 'खिश्चन' मिशनरियों का प्रवेश हुआ। स्वतंत्रता पूर्व काल में मुगल साम्राज्य का भारत पर अधिपत्य रहा, साथ ही आदिलशाही तथा निजामशाही का भी वर्चस्व था। मुगल राजकाल में कई बादशाह हुए जिन्होंने 'सांप्रदायिक सद्भाव' की मिसाल दे दी और औरंगजेब जैसे धर्मांध बादशाह भी रहे जिन्होंने सांप्रदायिक त्रासदी को बढावा दिया। लेकिन 'मुगल काल' में

हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का आदान-प्रदान होता रहा है। मुगल शासन काल में हिंदू-मुस्लिम जितने भाईचारे और आपसी लगाव से रहते थे उतने स्वतंत्र भारत में नहीं रह सके।

अँग्रेजों ने ही हिंदू-मुस्लिमों के बीच सांप्रदायिकता के विषैले बीज बोने का घृणित कार्य किया। उत्तर प्रदेश में बराकपुर के सैन्य-छावनियों के सैनिकों की एनफिल्ड बंदुकों की कारतुसों को सुअर और गाय की चरबी लगाकर अँग्रेजों ने हिंदू-मुस्लिमों के बीच तनाव उत्पन्न करने का षड्यंत्र किया। सन् 1857 आजादी की पहली जंग में अँग्रेजों के खिलाफ हिंदू-मुस्लिमों की साझी विरासत स्वतंत्रता पूर्व सांप्रदायिक एकता और सद्भावना का प्रतीक है। अँग्रेजों की 'विखंडित करो और राज्य करो' की राजनीति वही से शुरू हुई जिसका परिणाम 'भारत का बँटवारा ' है।

'भारत-पाक विभाजन' भारतीय इतिहास की एक प्रभावपूर्ण राजनीतिक घटना है, जिसने केवल दो मजहबों को ही नहीं तो सदियों से भाईचारे से रहनेवाले हिंदू-मुस्लिमों के दिलों को भी खंड-खंड में विभाजित किया। स्वतंत्रता पूर्व काल में 'हिंदू महासभा' और 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' जैसी हिंदुत्ववादी संगठनों ने मुस्लिमों के खिलाफ अलगाववादी भावना को बढ़ाकर दहशत का माहौल पैदा किया। जिसके प्रत्युत्तर में 'मुस्लिम लीग'ने 'मुस्लिम राष्ट्रवाद, को ऊर्जा देकर बढ़ावा दिया। बॅ. सावरकर का 'द्वि-राष्ट्रवाद' और बॅ. जीना का 'मुस्लिम राष्ट्रवाद' भारत विभाजन के सहाय्यभूत घटक रहे हैं। भारतीय राजनेताओं की निष्क्रियता और हिंदू-मुस्लिमों के परस्पर विरोधी राष्ट्रवादी झगडों में अँग्रेजों की 'विखंडित करो और राज्य करो' की चाल कामयाब हुई और आखिरकार 'भारत-पाक विभाजन' हो गया।

स्वाधीन भारत में एक ओर स्वराज्य का आनंदोत्सव था तो दूसरी ओर स्वतंत्रता के वेदी पर सदियों से भईचारे से रहनेवाले हिंदू-मुस्लिम खून की होली खेल रहे थे। तब से लेकर आजतक हिंदू-मुस्लिमों के बीच नफरत की सरहद्दें बनी है, जिसे मोहब्बत में बदलने की चुनौती है। सन् 15 अगस्त, 1947 को भारत को आजादी मिली, लेकिन विभाजन का जख्म लेकर, जो आज भी अनेकों के दिलों में रिस रहा है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में इसी 'सांप्रदायिकता' के उन्माद में महात्मा गांधी की हत्या हुई जिन्होंने आजीवन शांति और अहिंसा के लिए सारा जीवन समिर्पित किया। सन् 1948 में गांधीजी की हत्या के बाद अनेक जगहों पर ब्राह्मणों के खिलाफ सांप्रदायिकता की अग्नि भडक उठी। यह भारतीयों के जीवन की शोकांतिका रही कि

जिस महापुरूष ने सांप्रदायिक सद्भाव के लिए अपने प्राणों की बाजी लगा दी उसी महामानव की सांप्रदायिकता की विकृत मानसिकता ने बलि ली और उनकी मृत्यु के पश्चात् भी 'सांप्रदायिकता' के उन्माद ने अनेकों के घरों को तबाह कर डाला।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सांप्रदायिक परिवेश में हिंदू-मुस्लिम धार्मिक विसंवाद के साथ जातिवाद का भी उग्र रूप सांप्रदायिकता के लिए सहायक रहा। 'खलिस्तान' की माँग और इंदिरा गांधी की हत्या, तमिलनाड़ में दलितों का धर्मांतरण, मंडल आयोग की आरक्षण नीति, कश्मीर सीमा विवाद, वांशिक भेद, शहाबानों का तलाक प्रकरण, अयोध्या का मंदिर-मस्जिद विवाद आदि से स्वातंत्र्योत्तर सांप्रदायिक माहौल गर्म रहा। सांप्रदायिकता के इस उन्मादी वातावरण में इंदिरा गांधी और राजीव गांधी माता-पुत्र की हत्या भारतीय राजनीति की दुःखद त्रासदी है।

20 वीं सदी के अंतिम दशक (1991-2000) का सांप्रदायिक माहौल हिंदू-मुस्लिमों के वैमनस्य का प्रतीक रहा है। मंदिर-मस्जिद विवाद ने सांप्रदायिक उन्माद को चरमसीमा पर पहुँचाया। राजनीतिज्ञों के दाँवपेचों ने सन् 1992 में बाबरी मस्जिद को उध्वस्त करके एक ऐसे कारनामे को अंजाम दिया जिससे भारत के साथ पडोसी मुल्क बांग्लादेश और पाकिस्तान में भी इस घटना की हिंसक प्रतिक्रिया देखने मिली। अनेक जगहों पर छिडे दंगें-फसादों में अनेक निरापराधियों की हत्या की गई। 'बाबरी कांड' की घटना के प्रत्युत्तर में मुंबई को सन् 1993 में 13 बम विस्फोटों की शृंखला से हिला कर रख दिया जिससे भारत के अर्थनीति पर गहरा असर हुआ।

स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर 20वीं सदी के अंतिम दशक तक का सांप्रदायिक परिवेश हिंदू-मुस्लिमों के पारंपारिक वैमनस्य से उग्र रहा जिसका प्रमुख स्त्रोत 'भारत विभाजन' है। साथ ही भारतीय जातिव्यवस्था के कडे बंधनों और संकुचित जातीवादी मानसिकता ने भी सांप्रदायिकता के हवन कुंड में हमेशा विद्वेष का घी डालने का कार्य किया है।

विश्व के सबसे बडे प्रजातांत्रिक देश भारत की वास्तविक पहचान देहातों से है। भारत की सच्ची आत्मा देहातों में बसती है। इस शोध विषय पर चिंतन करते समय ग्रामीण जीवन पर आधारित उपन्यासों को केंद्र में रखने के कारण हिंदी साहित्य की ग्रामांचलिक उपनयासों की विकास यात्रा को देखना स्वाभाविक है। भारतीय हिंदी साहित्य में 'आँचलिक' उपन्यासों का प्रचलन विदेशी साहित्य से प्रभावित जरूर है, लेकिन अनुकरण नहीं है। 'अँचल' से बना 'आँचलिक' शब्द उस अर्थ को प्रस्तुत करता

है जिसमें किसी क्षेत्र का, प्रदेश का, संस्कृति तथा मानवी समाज-जीवन का यथार्थवादी चित्रण होता है। महात्मा गांधीजी के 'देहातों की ओर चलो' नारे ने समस्त हिंदी साहित्य विश्व को हिला दिया और साहित्यिकों ने पिछडे देहाती जीवन को साहित्य का प्रमुख विषय बनाया। 'आँचलिक' उपन्यास आंदोलन के रूप में प्रतिष्ठित हुए जिन्होंने यथार्थवादी भारत का पहली बार दर्शन करवाया।

स्वतंत्रता पूर्व काल में मनोरंजन और मानवी मूल्यों को विषय बनाकर लिखे जानेवाले हिंदी उपन्यासों ने करवटें बदल ली और प्रेमचंद ने सुदूर अँचलों, देहातों में बसे निरीह, भोलेभाले ग्रामीणों के सादगीपूर्ण जीवन का वास्तविक चित्रण किया। 'आँचलिक उपन्यासों' की पृष्ठभूमि निर्माण करने में प्रेमचंद, प्रसाद, नागार्जुन, निराला, वृंदावनलाल वर्मा, आ. चतुरसेन शास्त्री आदि रचनाकारों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन 'आँचलिकता' का वास्तविक शुद्ध रूप फणीश्वरनाथ रेणु के 'मैला आँचल' (1954), से निखर उठता है। आँचलिक उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर युग की देन है जिसका साहित्यिक सफर 20वीं सदी के अंतिम दशक तक निरंतर गतिशील रहा है।

स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर 20 वीं सदी के अंतिम दशक तक के ग्रामांचलिक उपन्यासों के संक्षिप्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि भारत की आबादी का आधे से भी ज्यादा हिस्सा देहातों में बसता है। स्वाधीनता के प्राप्ति के बाद ग्रामीण समाज-जीवन के उत्कर्ष के लिए अनेक विकास योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया। शिक्षा के सुनियोजित अवसर, बिजली, हरित क्रांति, औद्योगिकीकरण, सड़क निर्माण, स्वास्थ्य केंद्रों का निर्माण, बाँध परियोजना, नारी अस्मिता की पहचान आदि से भारत के गाँव-गाँव गूँज उठे। लेकिन वास्तव में स्वराज्य के बाद ग्रामीणों के सुराज्य के सपने का मोहभंग हुआ। ग्राम-विकास का मोहभंग हुआ। ग्राम-विकास के संदर्भ टूटकर बिखर गए। स्वराज्य के बाद भी ग्रामीणों की अभावग्रस्त दशा 20 वीं सदी के अंतिम दशक तक, आज तक बरकरार है। सामंतवादी, पूँजीवादी जमींदारों ने शोषण के शिकंजों से ग्रामीणों को दबोच लिया है जिससे छुटकारा पाने के की कोशिश स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर आज तक जारी है। पूँजीवादी मानसिकता के तले दबे किसान-मजदूर नारकीय जीवन जीने के लिए अभिशप्त है। नारी भी इस शोषण से बची नहीं या तो वह जमींदारों की वासना शिकार होती है या फिर उनकी दासी बनकर रहती है।

ग्रामीण राजनीति स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर 20 वीं सदी के अंतिम दशक के ग्रामांचलिक उपन्यास-साहित्य में व्यंग्य का विषय रह चुकी है। राजनीति का नीतिहिन होना सभी ग्रामांचलों का दर्द है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन के बाद गाँव के जमींदार राजनीति को आमदनी का जरिया बनाकर काला धन इकट्ठा कर रहे हैं। ग्रामीण विकास योजनाओं से वह स्वकल्याण के पीछे लगे हुए है, मानो वह गाँव का जीवन-रस ही सोख रहे हैं। सरकारी मुलाजिमों, सेवकगणों, पुलिस कर्मियों के भ्रष्टाचार ने ग्राम-विकास को कीडे की तरह कुरेद लिया है।

शिक्षा प्राप्ति के सुअवसरों से, आरक्षण नीति से देहातों में बसे लोगों को विकास का मौका मिल रहा है, लेकिन वे इसका पूरा लाभ नहीं उठा सकते क्योंकि वहाँ भी उच्च वर्गीय लोगों का बोलबाला है। शिक्षा से गाँव का माहौल बदल रहा है जिससे ऊर्जा पाकर गाँव के लोगों में चेतना का उदय हो रहा है। वे अपने हकों-अधिकारों को भलीभाँति समझकर ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते हैं।

स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर 20 वीं सदी के अंतिम दशक के ग्रामांचलिक उपन्यास-साहित्य में विकासों के नये-नये पडावों से प्रभावित ग्रामीणों के परिवर्तित जीवन को देखा जा सकता है। जहाँ एक ओर विकास का अमृत है तो दूसरी ओर विकृतियों का गरल भी है। शहरों-महानगरों से विकास के साथ आयी विकृतियों ने ग्राम-संस्कृति तथा ग्रामीण पुरानी आत्मा क्षतिग्रस्त हो गई है। भौतिकवादी सुख-लालसा, मूल्य-विघटन, शहरी सभ्यता-संस्कृति का अंधानुकरण, गुंडई, मार-काट, लूट-खसौट, अपहरण, स्मगलिंग-डकैती, यौन-विकृति, परिवार-विघटन, हडपनीति, भ्रष्टाचार, ग्राम्य-जीवन से पलायन, नई-पुरानी पीढ़ी का वैचारिक वैषम्य, संयुक्त परिवार की टूटन, सांप्रदायिकता की विद्‌ग्धता, विस्थापन की समस्या आदि विविध संदर्भ बदलते ग्रामांचलों की तस्वीर हैं जिसका प्रतिबिम्ब हमें स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर 20 वीं सदी के अंतिम दशक तक के ग्रामांचलिक उपन्यास-साहित्य में दृष्टिगोचर होता है।

20 वीं सदी के अंतिम दशक के ग्रामीण उपन्यासों में सांप्रदायिकता तथा विस्थापन की त्रासदी दो नये पहलू हैं जो ग्राम्य-जीवन में नगरों-महानगरों की स्वार्थनीति के कारण आयात हुए हैं। सांप्रदायिकता की विद्‌ग्धता से ग्राम्य माहौल साशंक बना हुआ है जिससे ग्रामीण लोग अपनी 'राम-राज्य' वाली अस्मिता खो रहे हैं। अतः स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर 20 वीं सदी के ग्रामांचलिक उपन्यासों की विकास

यात्रा में अपने पूर्व जीवनमानों से परिवर्तित ग्रामांचलों का यथार्थवादी वर्णन लेखकों ने किया है, जिससे संपूर्ण साहित्य सजीव बन उठा है।

20 वीं सदी के अंतिम दशक में अनेक युवा रचनाकारों ने अपनी साहित्यिक कृतियों के माध्यम से हिंदी साहित्य विश्व पर अपनी अमीट छाप छोडी है । वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991), मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' (1994) तथा अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देखे' (1996), ये तीनों उपन्यास अंतिम दशक की बहुचर्चित औपन्यासिक कृतियाँ है, जिसमें वर्तमान ग्राम-जीवन का वास्तविक रूप पाठकों के सम्मुख स्पष्ट होता है।

वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991), उपन्यास केंद्र में 'विस्थापन' की समस्या कार्यरत है, जो ग्रामीण-जीवन में नितांत नवीन है और वर्तमान जीवन की त्रासदी है। पूरे उपन्यास में सामंती शोषण के हथकंडें, सांप्रदायिकता की त्रासदी, राजनेताओं के झूठे आश्वासन, सरकारी मुलाजिमों की भ्रष्टनीति, निरीह-भोले ग्रामीणों की लूट आदि का सजीव चित्रण है, जो रचनाकार का भोगा हुआ यथार्थ है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' (1994), उपन्यास में ग्रामीण नारियों की व्यथा की कथा है, जिसमें तीन पीढ़ियों का लेखा-जोखा है। तीनों पीढ़ियों का वैचारिक वैषम्य एक-दूसरे के साथ हमेशा संघर्षरत रखता है। साथ ही सांप्रदायिकता का विषाक्त माहौल गाँव की एकता को क्षतिग्रस्त करता है। नयी-पुरानी पीढ़ी का संघर्ष, और विस्थापन के खिलाफ मंदा का समर्पित जीवन उपन्यास का प्राण है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देखे' (1996), उपन्यास में लेखक ने सांप्रदायिकता के असामाजिक तत्त्वों को केंद्र में रखकर ग्रामीण-जीवन में पनप रहे विषाक्त माहौल का सजीव चित्रांकन किया है। लेखक ने सूक्ष्मता से सांप्रदायिक उत्पीड़न की जटिलता को स्पष्ट किया है। बहुसंख्यक हिंदुओं के समाज में अल्पसंख्यकों की दशा एवं दिशा पर लिखा गया उपन्यास बदलते ग्रामांचलों के उस कुरूप मुखडे का रहस्योद्‌घाटन करता है, जो समस्त भारतीय अँचलों का प्रतिनिधित्व करता है।

विवेच्य उपन्यासों में ग्रामांचलों की शोषणगाथा, अभावग्रस्त जीवन, सांप्रदायिकता की विद्‌ग्धता, विस्थापन की समस्या, हडपनीति, ग्राम-गंदी राजनीति, मूल्य-विघटन, शहरों की भौतिकवादी जीवनशैली का अंधानुकरण, असुरक्षित ग्रामीण-जीवन के कारण गाँव से पलायन आदि ग्राम-जीवन से जुडे विविध संदर्भ बदलते परिवेश, बदलते भारतीय गाँवों की तस्वीर को प्र?स्तुत करते हैं।

'सांप्रदायिकता' पर विचार करने के पश्चात् यह दिखाई देता है कि इसके केंद्र में प्रमुख कारण रही है 'भारत-विभाजन की त्रासदी'। 'भारत-विभाजन' ही वह घटना है जिसने सांप्रदायिक उन्माद को हमेशा बढावा दिया है, क्योंकि वहीं से हिंदू-मूस्लिमों के दिलों में हमेशा के लिए नफ़रत की खाईयाँ बनी जिसपर आज तक सामंजस्य के पूल नहीं बन पाये हैं। 'भारत-विभाजन' के समय मनुष्य का बर्बर पाशवी रूप देखने मिला, जिसने नर संहार, रक्तपात, लूट-खसौट, बलात्कार जैसे जघन्य अपराध किए। मनुष्य का बिभत्स रूप 'भारत-विभाजन' की देन है जो अक्सर सांप्रदायिक दंगों में दृष्टिगोचर होता है। 'भारत-विभाजन' के कारण ही सांप्रदायिकता में बढोतरी ही हुई है।

'सांप्रदायिकता' के उन्माद ने भारतीय परिवेश में अनेक दंगों को जन्म दिया है। भारतीय इतिहास सांप्रदायिक दंगों से भरा पडा है। भारत में 'भारत-विभाजन' के पश्चात् मुंबई, अहमदाबाद, कलकत्ता, नोआखाली, बिहार, पंजाब, दिल्ली में भयानक दंगे छिड गए। भारत विभाजन के समय निर्माण मनुष्य के क्रूर तथा दानवी रुप का भारत के इतिहास में जोड नहीं है। गांधी हत्या से भडके दंगें, तमिलनाड़ में धर्मांतरण के कारण दलितों की हत्या, खलिस्तान की माँग के लिए भिंद्रानवालों के उग्र दंगे-फसाद, इंदिरा जी की हत्या और शिख विरोधी दंगें, वांशिक भेद, राजीव गांधी की हत्या, शहाबानो तलाक प्रकरण से बना गर्म माहौल, बाबरी कांड, मंडल कमिशन के कारण छिडे सांप्रदायिक दंगें, गुजरात का गोध्रा हत्याकांड, कश्मीर-सीमा प्रश्न, संसद पर हुआ आतंकवादी हमला, मुंबई विस्फोट आदि उग्र सांप्रदायिक घटनाओं के कारण भारत का सामाजिक जीवन हमेशा प्रभावित रहा है। उपर्युक्त सांप्रदायिक घटनाएँ भारतीय जनमानस को मिले ऐसे जख्म है जो शायद ही भर पायेंगे।

'सांप्रदायिकता' के नाम पर भडके दंगें जितने भीषण होते हैं उससे भी ज्यादा उसके समाज और मानवी-जीवन पर होनेवाले दुष्परिणाम भयानक तथा दीर्घकालीन होते हैं। सांप्रदायिकता के इस शैतानी तांडव में न हिंदू मरता है, न मुसलमान इन्सानीयत मरती है; निरपराध लोग झुलस जाते हैं। सांप्रदायिकता की इस बलि वेदी पर करोडों लोगों ने जान गवाई है। निरापराधियों का निर्मम कत्ल सांप्रदायिकता का भयावह परिणाम है। साथ ही सांप्रदायिक दंगों में दंगाइतों द्वारा आगजनी में निजी तथा सरकारी माल का काफी नुकसान होता है, जिससे भारत सरकार की वित्त व्यवस्था पर बोझ बढता है। मनुष्य का संवेदनाहीन तथा मूल्यहीन

होना सामाजिक और राष्ट्रीय एकता-अखंडता के लिए खतरा निर्माण कर रहा है। सामाजिक शांति और सुरक्षा के सामने संकट पैदा हो रहे हैं। आज 'सांप्रदायिकता' आतंकवाद के रुप में आम मानवी-जीवन के दहलीज तक पहुँच चुकी है। लोग संदेह और आतंक में जीवन निर्वाह कर रहे हैं जिससे उनके जीवन से खुशहाली विलुप्त हो गई है। नारी विवशता तथा शरणार्थियों की समस्या ने भारत के सामाजिक जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है।

'सांप्रदायिकता' के दानवी शिकंजों से निजात पाने के लिए हमें कुछ तात्कालिक और दीर्घकालीन उपाय करने की आवश्यकता है। कार्यक्षम पुलिस और न्यायाधिष्ठित तेज न्याय व्यवस्था सांप्रदायिकता को गतिरोध उत्पन्न कर सकती है। हमें अपने परिवारों से ही 'सर्वधर्मसमभाव' के संस्कार अर्जित करने होंगे, जिससे हम बलवान भारत बना सकेंगे। शिक्षा केंद्रों में हिंदू-मुस्लिम सामंजस्य तथा जातीय एकता पर बल देना चाहिए जिससे एक-दूसरे के प्रति विश्वास और प्रेम वृद्धिंगत होगा। 'मोहल्ला कमिटी', 'शांति-सद्भाव अभियान' आदि के द्वारा सर्व धर्म सामंजस्य, परंपरा, ज्ञान, संस्कृति आदि का आदान-प्रदान करके सांप्रदायिक सद्भाव को बढावा देना चाहिए। जन संचार माध्यमों के जरिए तथा सृजनात्मक साहित्य निर्मिति से 'सांस्कृतिक सद्भाव' निर्माण करना चाहिए। धर्मगुरूओं की अहम भूमिका होने के कारण धर्म के प्रतिनिधियों को सर्वधर्म सामंजस्य की नीति का संस्कार करके 'विश्व बंधुत्व धर्म' का प्रचार एवं प्रसार करना चाहिए। प्रत्येक भारतवासी को जाति, धर्म से पहले देशहित को ध्यान में रखना चाहिए। बंधुत्व, परधर्म सहिष्णु वृत्ति, एकता, राष्ट्रभक्ति की ज्योत-से-ज्योत जलाकर समस्त भारत में सांप्रदायिक सद्भाव का आलोक फैलाना होगा। तभी कहलायेगा 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्ताँ हमारा' और समस्त विश्व 'भारतीय संस्कृति' को वंदन करेगा।

"२० वीं सदी के अंतिम दशक के ग्रामीण उपन्यासों में सांप्रदायिकता" (डूब', 'इदन्नमम' और 'मुखडा क्या देखे' के विशेष संदर्भ में) इस विषय पर सोचते समय विवेच्य उपन्यासों में सांप्रदायिक त्रासदी के मूल में हिंदू-मुस्लिमों का वैमनस्य रहा है यह स्पष्ट होता है। उपन्यास की सभी घटनाएँ भारत-विभाजन की त्रासदी से प्रभावित है। वीरेंद्र जैन के 'डूब' (1991), उपन्यास में विभाजन से भडकी आग में रघुसाव के घर तथा दुकान को मुसलमानों द्वारा तबाह किया होता है। इस प्रलय में उनके दो

छोटे पोतों तथा बहुएँ मारी जाती है। जिसका हादसा रघुसाव सह नहीं पाते और सांप्रदायिकता के विद्‌ग्धता से गाँव छोडने का निर्णय लेते हैं। बामण महाराज तथा मातेद्‌वारा समझाने पर भी वे नहीं मानते और आखिकार गाँव छोडते हैं। मोतीसाव द्‌वारा मुसलमानी पथरा पर पत्थर चढाने के कारण उन्हें धर्मभ्रष्ट घोषित करके गाँव से बहिष्कृत कर दिया जाता है। सांप्रदायिकता की भीषणता से रघुसाव का गाँव छोडना सांप्रदायिकता के विषाक्त माहौल की उपज है।

मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' (1994), उपन्यास में लेखिका ने सांप्रदायिकता के असामाजिक तत्त्वों पर सूक्ष्मता से चिंतन किया है। भा.ज.पा. की 'रथयात्रा', फिर 'बाबरी विध्वंस', 'मंडल कमिशन' पर उठा कोलाहल आदि घटनाएँ सांप्रदायिकता की त्रासदी के केंद्र में हैं। बहरा वकिल द्‌वारा 'आरक्षण नीति' का गलत प्रप्रचार सांप्रदायिक बवाल को निर्माण करता है। रथयात्रा और बाबरी कांड के संदर्भ में रेडियों पर प्रसारित अधसच खबरों को सुनकर श्यामली गाँव में हिंदू; मुस्लिमों पर टूट पडते हैं। चीफसाहब की बखरी को तबाह करना, चीफसाहब का सामाजिक व्यवहार बंद होकर उनका घर में कबूतर की भाँति बैठना, बन्ने मास्साव का दंगों में कत्ल हो जाना, उनकी बेटियों को विवशतावश उदरपूर्ति के लिए देह विक्रय करना, चीफ साहब का गाँव छोडकर चले जाना आदि घटनायें ग्रामांचलों में उभरे सांप्रदायिक विद्‌ग्धता को स्पष्ट करती है। बरसों से एकता की मिसाल बना श्यामली गाँव पलभर में सांप्रदायिक उन्माद से क्षतिग्रस्त होता है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'मुखडा क्या देख' (1996), उपन्यास में बहुसंख्यक हिंदुओं के गाँव अल्पसंख्यक मुस्लिामों के दयनीय जीवन को प्रस्तुत किया गया है। भारत विभाजन की हवा ने ग्राम जीवन को बुरी तरह प्रभावित किया है। हिंदुत्ववादी पं. रामवृक्ष पांडे 'अपूर्ण विभाजन' से रूष्ट होकर गाँव के मुस्लिमों से घृणा करते हैं। अल्ली चुड़िहार का पं. रामवृक्ष पांडे बेटी लता की शादी में न आना उनके हिंदुत्ववादी विचारधारा को ठेस पहुँचाता है और वे अल्ली चुड़िहार को पीटते हैं। अंतधर्मिय विवाह से जबलपुर में दंगें छिड जाते हैं। धर्मांतरण से गाँव का माहौल तनावग्रस्त बनता है। स्कूली बच्चों में सांप्रदायिकता का विष सांप्रदायिक त्रासदी की भीषणता को दर्शाता है। बुद्‌धू द्‌वारा हिंदू कन्या भूरी को भगाकर शादी करने के कारण गाँव के लोग अल्ली चुड़िहार को बदतर पीटते हैं। गाँववालों की इस दहशत से अल्ली चुड़िहार बलापुर छोडकर दूसरे गाँव अपना आशियाना बसाता है।

अतः स्पष्ट है कि 'सांप्रदायिकता' की त्रासदी ग्राम्य-जीवन में नितांत नवीन है। नगरों-महानगरों के धूर्त लोग गाँववालों के भोलेपन का फायदा उठाकर उन्हें सांप्रदायिकता की गहरी खाई में धकेल रहे हैं। हाजारों सालों से आपसी भाईचारे से, विचार-विनिमय से रहनेवाले ग्रामीण लागों में मजहबी नफरत का विषैला प्रचार किया जाने लगा है। जाति और धर्म के नामपर ग्रामांचलों में आतंक का माहौल बनाया जा रहा है। सांप्रदायिकता की विद्‌ग्धता से गाँव के लोग विस्थापन की कगार से गुजर रहे हैं। 'डूब' उपन्यास के रघुसाव, 'इदन्नमम' उपन्यास के चीफसाहब तथा मुखडा क्या देखे उपन्यास के अल्ली चुड़िहार आदि पात्र सांप्रदायिकता की भीषणता से जीवन रक्षा हेतु गाँव से विस्थापित होते हैं। सांप्रदायिकता का यह जहर गाँवों की खुशहाल जिंदगी को तबाह कर रहा है। वर्तमान ग्रामांचलों में सांप्रदायिकता की त्रासदी नगरों-महानगरों से आयात है ज्यो ग्राम्य-जीवन में नूतन मुखडे से विराजमान हो रही है। सांप्रदायिकता से ग्राम-संस्कृति के सामने अनेक संकट पैदा हुए है, जिससे ग्रामांचल अपनी 'राम-राज्य' तथा 'सुराज्य' वाली अस्मिता खो रहे हैं।

'सांप्रदायिकता' की प्रासंगिकता से भारत का जर्रा-जर्रा प्रभावित हो चुका है। 'सांप्रदायिकता' की भयावहता से मानवी-जीवन बुरी तरह प्रभावित हो चुका है। इस समस्यामयी माहौल में देश की युवा पीढ़ी का यह कर्तव्य बनता है कि वह विधायक सोच और रचनात्मक कार्यों से 'सांप्रदायिकता' के उत्पीड़न से निजात पाने के लिए अपना बहुमोल योगदान दे। भारत की वास्तविक पहचान 'विश्व बंधुत्व' की रही है। संत ज्ञानेश्वर, संत तुकाराम, संत कबीर, गौतम बुद्‌ध, भगवान महावीर, स्वामी विवेकानंद, महमंद पैगंबर, गुरु नानक आदि युगपुरुषों ने समस्त विश्व को 'मानव धर्म' का उपदेश दिया है। अतः हमारा नैतिक कर्तव्य बनता है कि हम उस जागीर के वारिस बने जिसमें 'मानवता' का सार नीहित हो। भारतीय संतों के दर्शन एवं तत्त्वज्ञान से विश्व को जीवन-दृष्टि मिली हैं। अतः हमें भी इसी विधायक दृष्टि से 'सांप्रदायिकता' के उत्पीड़न का जड़ोन्मूलन करके 'भारतीय संस्कृति' की विश्व प्रतिमा एवं प्रतिभा के आलोक हमेशा बनाए रखना होगा। तभी कहलायेगा 'सारे जहाँ से अच्छा हिंदुस्ताँ हमारा' और समस्त विश्व 'भारतीय संस्कृति' के आगे सदैव नतमस्तक रहेगा।

✧ प्रस्तुत लघुशोध–प्रबंध की उपलब्धियाँ :

प्रस्तुत लघुशोध–प्रबंध की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ इसप्रकार है :

1) विवेच्य उपन्यासों में ग्रामीण-जीवन के अन्य पहलुओं के साथ–साथ ग्रामीण-जीवन को उध्वस्त करनेवाली 'सांप्रदायिकता' का यथार्थ एवं सूक्ष्मता के साथ चित्रण किया है।

2) विवेच्य उपन्यासों के जरिए विवेच्य उपन्यासकारों ने 'सांप्रदायिकता' की बढ़ोतरी को विशद करके 'सांप्रदायिकता' के हादसों से ग्रामीण एकता में आनेवाली रिश्तों की टूटन को रोकने का संदेश दिया है।

3) विवेच्य उपन्यासों में ग्रामीण-जीवन में प्रविष्ट 'सांप्रदायिकता' की विद्‌ग्धता को विशद किया है।

4) ग्रामीण-जीवन में पनपती जा रही 'सांप्रदायिकता' को रोकने के उपायों का जिक्र भी किया हैं।

5) मुगल शासन काल में 'सांप्रदायिक सद्‌भाव' के साथ ही हिंदू-मुस्लिमों के संस्कृति का परस्पर मिलन होता रहा है। सन् 1857 की जंग हिंदू-मुस्लिम एकता का प्रतीक है।

6) 'भारत-पाक बँटवारा' अँग्रेजी षड्‌यंत्र और भारतीय राजनेताओं की असामंजस्यपूर्ण निष्क्रियता का परिणाम है, जिससे हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की सरहद्‌दें बनी जो वर्तमान समय तक बरकरार हैं।

7) 'सांप्रदायिकता' के उन्माद में युगपुरुष महात्मा गांधी की हत्या भारतीय इतिहास की बहुत बडी शोकांतिका है। साथ ही इदिरा गांधी और राजीव गांधी जैसे प्रतिभावंत प्रधानमंत्री की हत्या 'सांप्रदायिकता' का हिंस्र नतीजा है, जिससे भारतीय राजनीति की अपरिमित हानि हुई।

8) भारत की सच्ची आत्मा देहातों में बसती है। फलस्वरुप हिंदी साहित्य में गाँवों की सौंधी मिट्‌ठी की सुगंध मिलती हैं। हिंदी उपन्यास में ग्राम-जीवन का यथार्थ चित्रण साहित्य का अभिन्न अंग बना है।

9) 20 वीं सदी के अंतिम दशक के विवेच्य ग्रामीण उपन्यास ग्रामांचलों के वर्तमान जीवन की यथार्थवादी व्याख्या करते हैं। प्रत्येक रचना ख्वाबों का ढकोसला न होकर रचनाकार का भोगा हुआ वास्तविक जीवन है,जो रचना मे उद्‌घाटित हुआ है।

10) वर्तमान समय में 'सांप्रदायिकता' के राक्षस का संहार करने के लिए 'मानव धर्म' की स्थापना करना आवश्यक है। 'राष्ट्र कर्तव्य' को सबसे उच्च मानकर 'भारतीय संस्कृति' की गरिमा को विश्व नभोमंडल पर स्थापित करना प्रत्येक भारतवासी का सपना होना चाहिए। इसी संदेश का वहन विवेच्य उपन्यासों के उपन्यासकार करते हैं।